- प्रकाशक :
  हरयाणा साहित्य संस्थान
  गुरुकुल झज्जर, जिला झज्जर
  दूरभाष : ०१२५१-५२०४४, ५३३३२

- **मूल्य : ६-०० रुपये**

- पंचम संस्करण ५०००

- विक्रम संवत् २०५७

- अक्तूबर, २००० ई०

- मुद्रक :
  आचार्य प्रिंटिंग प्रेस
  दयानन्दमठ, गोहानामार्ग, रोहतक
  दूरभाष : ०१२६२-४६८७४, ५७७७४

विषय-सूची

प्राक्कथन

ब्रह्मचय के साधन लेखमाला के दशम भाग में 'निद्रा' पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। निद्रा का ब्रह्मचर्य के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है समुचित निद्रा के अभाव में वीर्यरक्षा में सफलता नहीं मिल सकती और न ही स्वास्थ्य ठीक रह सकता है। अनेक व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो जागृतावस्था में तो अपनी इन्द्रियों को वश में रखने में समर्थ हो जाते हैं किंतु स्वप्नावस्था में मन में विकार उत्पन्न होकर स्वप्नदोष आदि के शिकार हो जाते हैं। अत एव चाहते हुए भी ब्रह्मचर्य पालन एवं वीर्य रक्षा करने में सफलता नहीं मिलती। इस पुस्तक में इसका भी समाधान मिल सकेगा।

सामान्यतया रात्रि में ही सोने का विधान है और इसी से स्वास्थ्य उत्तम रहता है तथा दीर्घायुष्य की प्राप्ति होती है। सुश्रुत में लिखा है—

तस्मान्न जागृयाद्रात्रौ दिवास्वप्नं च वर्जयेत्।
ज्ञात्वा दोषकरावेतौ बुधः स्वप्नं मितं चरेत् ॥३६॥
अरोगः सुमना ह्येवं बलवर्णान्वितो वृष।
नातिस्थूलकृशः श्रीमान् नरो जीवेत् समाः सतं ॥४४॥

निद्रा के विषय में सुश्रुत शरीरस्थान अध्याय ४ तथा चरक सूत्र-स्थान अध्याय २१ विशेषतया द्रष्टव्य हैं।

सामान्यतया मनुष्य की आयु १०० वर्ष की मानी गई है। इसमें से आधा भाग रात्रि का होने में नष्ट करने वाले व्यक्ति भर्तृहरि के इस श्लोक पर ध्यान दें।

आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धं गतं,
तस्यार्धस्य परस्य चार्धमपरं बालत्ववृद्धत्वयोः।
तेषां व्याधिवियोगदुःखसहितं सेवादिभिर्नीयते,
जीवे वारितरङ्गचञ्चलतरे सौख्यं कुतः प्राणिनाम्।
(वैराग्यशतक श्लोक ४६)

ब्रह्मचर्य के साधन

निद्रा

[दशम भाग]

निद्रा क्या है

सभी प्राणी मनुष्य, पशु-पक्षी, वनस्पति इत्यादि निद्रा के बिना जीवित नहीं रह सकते। अथवा इस प्रकार कहिये जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज सभी प्रकार के प्राणी शयन करते हैं। कुछ जीव-जन्तु तो अपने जीवन काल का आधे से अधिक समय सोने में ही व्यतीत करते हैं। यहां तक कि सब प्राणियों में श्रेष्ठ कहा जाने वाला मनुष्य भी अपने जीवन का चौथाई अथवा तिहाई काल सोने में ही लगाता है और कोई कोई कुम्भकर्णी प्रकार के निद्रालु मनुष्य तो जीवन का आधा वा इससे भी अधिक समय शयन में ही खाते हैं। इतने पर भी कितना आश्चर्य है कि सोते सभी हैं किन्तु निद्रा यथार्थ में क्या है? इसे जानने वाले बहुत ही विरले व्यक्ति हैं।

हमारे ऋषियों ने सभी तत्वों को यथार्थ रूप से समझा है और समझकर प्राणियों के कल्याणार्थ उपदेश किया है। तत्ववेत्ता यथार्थ ज्ञान के साक्षात् करने वाले महर्षि धन्वन्तरि जी ने अपने आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ सुश्रुत के शारीर स्थान में लिखा है—

हृदयं चेतनास्थानमुक्तं सुश्रुत ! देहिनाम्।
तमोभिभूते तस्मिंस्तु निद्रा विशति देहिनम् ॥ ३४॥

हे सुश्रुत ! मनुष्यों की चेतना का स्थान हृदय अर्थात् मस्तिष्क कहा जाता है उस मस्तिष्क के तम से आक्रान्त वा

आच्छादित होने पर मनुष्यों अथवा सभी प्राणियों को निद्रा आ दबाती है। अतः महर्षि जो इसी को स्पष्ट करने के लिए पुनः लिखते हैं—

निद्राहेतुस्तमः सत्त्वं बोधने हेतुरुच्यते।
स्वभाव एव वा हेतुर्गरीयान् परिकीर्त्यते ॥३५॥

निद्रा का मूल कारण तमोगुण है और जागरण में सत्वगुण मूल कारण है अथवा स्वभाव को ही निद्रा का श्रेष्ठ कारण माना गया है। अर्थात् सभी प्राणियों की जो निद्रा स्वभाव से आती है, वह श्रेष्ठ कहलाती है। प्रत्येक प्राणी के स्वभाव में तमोगुण रहता ही है। उसके कारण वह निद्रा देवी की गोद में चला जाता है। ऋषियों ने तमोगुण की उत्पत्ति कफ से मानी है। "तमोभवा श्लेष्मसमुद्भवा च" (चरक सूत्र अ० २१ श्लोक ५७) में यह लिखा है कि जब जब कफ की वृद्धि होती है तब निद्रा महारानी के डेरे लग जाते हैं। जैसे भोजनोपरान्त कफ की वृद्धि होती है तभी निद्रा भी आ धमकती है। इसी प्रकार कफज्वरादि में भी निद्रा अधिक आती है। यह जीवात्मा जो कभी सोता नहीं, केवल इन्द्रियों के तमोगुण के कारण इसका मनादि ज्ञान तथा कर्म इन्द्रियों से सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है और इन्द्रियों से सम्बन्ध टूटने पर विषयों का ग्रहण भी नहीं करता, तब हम जीवात्मा को जो कभी नहीं सोता उसे सोया हुआ कहते हैं। तमोगुणयुक्त मन से आत्मा "भूतात्मा स्वपतः प्रभुः" सब का स्वामी भूतात्मा सोया हुआ कहलाता है। किन्तु यथार्थ बात यह है कि यही आत्मा है जो सोते हुए भी जागता रहता है।

निद्रा की आवश्यकता

यथार्थ बात यह है कि जब प्राणी कार्य करता-करता इतना श्रान्त हो जाता है कि इसका हृदय मस्तिष्क और शरीर सभी कार्य

करने में असमर्थ हो जाते हैं उस अवस्था में तमोगुण से व्याकुल हुई ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों को पुनः स्वस्थ होने के लिए भगवान् पूर्ण विश्राम अर्थात् निद्रा दान करके अपने प्रिय पुत्रों अर्थात् सभी प्राणियों को अनुगृहीत करता है। महर्षि धन्वन्तरि ने इस प्रकार लिखा है—

करणानां तु वैकल्ये तमसाऽभिप्रवर्धिते।
अस्वपन्नपि भूतात्मा प्रसुप्त इव चोच्यते ॥३७॥

तमोगुण के कारण इन्द्रियों में विकलता बढ़ने से न सोता हुआ भी जीवात्मा सोया हुआ कहा जाता है। चरक संहिता में भी इसी प्रकार से लिखा है—

यदा तु मनसि क्लान्ते कर्मात्मानः क्लमान्विताः।
विषयेभ्यो निवर्तन्ते तदा स्वपिति मानवः ॥

जब मनुष्य के मन में क्लान्ति आ जाती है और कर्मेन्द्रियां थक-कर अपने विषयों से निवृत्त हो जाती हैं, तब मनुष्य को निद्रा आ जाती है अर्थात् वह पूर्ण विश्राम करने के लिए अपने स्वभावानुसार सभी कार्यों का परित्याग कर निद्रा माता की गोद में चला जाता है। मनुष्य ही नहीं सभी प्राणियों की यही अवस्था समझें। बृहदारण्यकोपनिषद् में निद्रा वा सुषुप्ति का इस प्रकार वर्णन किया है।

स होवाचाजातशत्रुर्यत्रैष हैतत्सुप्तोऽभूद्य एष विज्ञानमयः पुरुषस्तदेषां प्राणानां विज्ञानमादाय य एषोन्तर्हृदय आकाशस्तस्मिञ्छेते तानि यदा गृह्णात्यथ हैतत्पुरुषः स्वपिति नाम तद् गृहीत एव प्राणी भवति गृहीता वाग्गृहीतं चक्षुर्गृहीतं श्रोत्रं गृहीतं मनः।

तब अजातशत्रु ने कहा जिस अवस्था में यह पुरुष अथवा विज्ञानमय पुरुष सो जाता है, उस अवस्था में वागादि इन्द्रियों के

सामर्थ्य को बुद्धिके साथ ही लेकर जो यह हृदयान्तर्वर्त्ती आकाश=ब्रह्म है उसमें सोता है तब इस पुरुष का नाम स्वपिति और अवस्था का नाम सुषुप्ति होता है उस समय घ्राण गन्ध को नहीं ले सकता, न वाणी बोल सकती, न चक्षु देख सकता, न श्रोत्र सुन सकता और न मन सङ्कल्प कर सकता है। भावार्थ यही है कि जीवात्मा मनादि सभी इन्द्रियों—शरीर को पूर्ण विश्राम देने के लिए इन सब से सम्बन्ध विच्छेद कर लेता है और बाह्य जगत् से सर्वथा नाता तोड़ कर प्रभु से नाता जोड़ लेता है। इसी का नाम निद्रा वा सुषुप्ति है। इसका वर्णन और विस्तार से इसी उपनिषद् में किया है।

"अथ यदा सुषुप्तो भवति यदा न कस्य च न वेद हितानाम-नाड्यो द्वासप्ततिः सहस्राणि हृदयात्पुरीततमभिप्रतिष्ठन्ते ताभिप्रत्य-वसृज्य पुरीतति शेते स यथा कुमारो वा महाराजो वा महाब्राह्मणो वाऽतिघ्नीम आनन्दस्य गत्या शयीतमेवैष एतच्छेते। १९।

वृहदारण्यकोपनिषद्।

जब वह पुरुष सुषुप्ति अवस्था को प्राप्त होता है, तब किसी बाह्य विषय को नहीं जानता किन्तु परमात्मा के साथ मिल जाता है अर्थात् हितानामक बहत्तर हजार नाडिया जो हृदय देश से पुरीतत को प्राप्त हैं उनके द्वारा जाग्रत विषयाकार बुद्धि से इन्द्रियों को हटाकर उसी पुरीतत देश में इस प्रकार शयन करता है जैसे कोई बालक, महाराज अथवा महाब्राह्मण निर्भय होकर सोता है।

पाठक समझ गए होंगे कि निद्रा देवी की गोद में क्या राजा वा रंक, क्या धनी वा निर्धन, क्या विद्वान् वा मूर्ख, क्या वृद्ध वा बालक, क्या कुंजर वा कीड़ी सभी एक समान हो जाते हैं। कार्य करते २ जो न्यूनता वा निर्बलता प्राणियों में जाग्रतावस्थादि में

आ जाती है वह निद्रा वा प्रभु की गोद में आकर पूर्ण हो जाती है। पुनः उसी शक्ति, स्फूर्ति, उत्साह, सामर्थ्य, आदि से अपनी गोद में सुलाकर निद्रा रूपी सूची भरण (इन्जेक्शन) द्वारा परिपूरित कर देता है। कोई भी पाठक यह सन्देह कर सकता है कि यदि हम कुर्सी वा शय्या पर चुपचाप लेट जायें तो इससे भी शरीरादि को विश्राम मिल जाता है, निद्रा की ही क्या विशेषता है। यह उचित है कि किसी सीमा तक तो कुछ विश्राम इस प्रकार लेटने से भी मिल जाता है किन्तु यह पूर्ण विश्राम नहीं कहला सकता क्योंकि इसमें हमारी चक्षु, नासिका, कर्ण तथा हमारा मन सब अपने कार्य में लगे होते हैं। यथार्थ में पूर्ण विश्राम सुषुप्ति से ही मिल सकता है क्योंकि निद्रा में सदैव कार्य करनेवाले शारीरिक अंग तथा इन्द्रियों को भी किसी न किसी मात्रा में सबको विश्राम मिल जाता है। हृदय की गति जो हमारे लिए अत्यन्त आवश्यक है, वह भी निद्रा में जाग्रतावस्था की अपेक्षा मन्द अर्थात् धीमी हो जाती है। इस प्रकार हृदय को भी कुछ विश्राम मिल जाता है। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार अर्थात् अन्तःकरणचतुष्टय को भी पूर्ण विश्राम सुषुप्ति में ही मिलता है। इसीलिए जहां प्रभु ने दिन कार्य के लिए बनाया, वहां सुषुप्ति के लिए रात्रि को बनाया यदि रात्रि दिन के पश्चात् विश्रामार्थ न आए तो कैसा भयानक दृश्य हमारे सम्मुख उपस्थित हो जाये इसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

निद्रा की उत्पत्ति के कारण

तमोभवा श्लेष्मसमुद्भवा च, मनः शरीरश्रमसम्भवा च।
आगन्तुकी व्याध्यनुवर्तिनी च रात्रिस्वभावप्रभवा च निद्रा ॥
(चरक, सूत्र० अ० २१ श्लोक० ५७)

निद्रा तमोगुण तथा कफ से उत्पन्न होती है, मन और शरीर के परिश्रम से निद्रा आती है, तथा विषादि सेवन से, चोटादि बाह्य

कारण से, रोग में भी निद्रा उत्पन्न होती है । और रात्रि में स्वाभाविक निद्रा उत्पन्न होती है, इसी का नाम भूतधात्री है।

निद्रा के भेद

महर्षि धन्वन्तरि इस विषय में निम्न प्रकार उपदेश देते हैं। 'निद्रां तु वैष्णवीं पाप्मानमुपदिशन्ति सा स्वभावत एव सर्वप्राणिनोऽभिस्पृशति ।' निद्रा दो प्रकार की होती है, जो स्वभाव से ही सब प्राणियों को आती है ।

(१) वैष्णवी, जिस प्रकार परमात्मा सर्वव्यापक और सब का पालन-पोषण करता है इसी प्रकार निद्रा सभी प्राणियों को प्राप्त और विष्णु परमात्मा के समान उचित समय पर उचित मात्रा पर ली हुई पालन और पोषण करनेवाली है चरकशास्त्र में इसी के विषय में 'रात्रिस्वभावप्रभवा मता या तां भूतधात्रीं प्रवदन्ति निद्राम् ।' अर्थात् जो रात्रि में स्वभाव से उत्पन्न होती है उसको भूतधात्री कहते हैं। प्राणिमात्र को माता वा धाय के समान दूध पिलाकर पुष्ट करनेवाली अथवा धारण-पोषण करने वाली 'वैष्णवी' निद्रा कही जाती है ।

(२) पाप्मा अर्थात् जो पाप है, अधर्म है, हानिकारक है। इसी के विषय में चरक शास्त्र में इस प्रकार कहा है —"तमोभवामाहुरघस्य मूलं शेषः पुनर्व्याधिषु० निर्दिशन्ति" अर्थात् तमोगुण की अधिकता से जो निद्रा होती है अथवा शरीर की व्याधि-रोगों में जो आवश्यकता से अधिक होती है और हानिकारक होती है, यह दिन और रात तम की प्रधानता से प्राणियों को अधिक मात्रा और अनुचित समय पर आनेवाली सर्वथा हानिकारक है, विनाशकारी है, घातक है। अतः इसे पाप्मा कहा है । यह जब अधिक बढ़ जाती है तो इस के विषय में महर्षि धन्वन्तरि कहते हैं —"तत्र यदा संज्ञावहानि स्रोतांसि तमोभूयिष्ठः श्लेष्मा प्रतिपद्यते तदा तामसी नाम

निद्रा संभवति अनवबोधिनी, सा प्रलयकाले, तमोभूयिष्ठानामहःसु निशासु च भवति" जब संज्ञावह (चेतना देनेवाले) स्रोतों में तम की प्रधानता वाला कफ पहुंच जाता है, तब तामसी निद्रा की उत्पत्ति होती है । इस में प्राणी जागता नहीं। इसी प्रकार की निद्रा प्रलयकाल में होती है । जिसके आने पर पुनः प्राणी न जागे यह अनवबोधिनी निद्रा प्रलयकाल अथवा मृत्युके समय आती है। तामसिक निद्रा वाले रात दिन सोते रहते हैं, जैसे तामसिक सिंह और भैंस। ऐसे ही कुम्भकर्णी निद्रा वाले तमोगुणी मनुष्य नाम के पशु भी शयन करते हैं।

अनिमित्त जब जागने वा सोने का कोई कारण नहीं होता बिना ही कारण के रजोगुण की अधिकता वालों का नींद आती है। जब रजोगुणी प्राणी कार्यलीन रहता है, तब निद्रा नहीं आती, जब खाली होता है तब तुरन्त ही निद्रा आ जाती है। इसी के विषय में सुश्रुत में कहा है "रजोभूयिष्ठानामनिमित्तं" रजोगुणी प्राणी को अनिमित्त निद्रा आती है। प्रायः रजोगुणी व्यक्तियों को हम सदा ही ऊंघते देखते रहते हैं। सतोगुणी व्यक्तियों अथवा प्राणि को "सत्त्वभूयिष्ठा नामर्धरात्रे" उचित समय अर्थात् आधी रात को निद्रा आती है। क्या ऐसे भी प्राणी हैं जिनको निद्रा नहीं आती ? इस विषय में सुश्रुत में लिखा है "क्षीणश्लेष्मणामनिलबहुलानां मनःशरीराऽभितापवतां च नैव, सा वैकारिकी भवति ॥३३॥ क्षीण कफवाले, वातप्रधानतावाले, मानसिक और शारीरिक दुःख में पीड़ित व्यक्तियों को निद्रा नहीं भी आती । यह "कारिको→विकारों से उत्पन्न होने वाली निद्रा कहलाती है। यह विकार वा रोग शारीरिक भी हो सकते हैं तथा मानसिक भी हो सकते हैं, जैसा कि पहले लिख चुका हूँ। इस विषय में महाभारत में भी एक श्लोक इस प्रकार आता है।

अभियुक्तं बलवता दुर्बलहीनसाधनम् ।
हृतस्वं कामिनं चोरमाविशन्ति प्रजागराः ॥

प्रजागर पर्व १३ श्लो० ३३ अ०

विदुर ने धृतराष्ट्र को कहा—राजन् जिसका बलवान् के साथ विरोध हो गया हो, उस साधनहीन दुर्बल मनुष्य को, जिसका सब कुछ हर लिया है उसको, कामी तथा चोर को रात में नींद नहीं आती। यहां निद्रा के न आने के कारण मानसिक विकार ही बताये हैं। इन्हीं में से एक दो कारणों के कारण धृतराष्ट्र को निद्रा नहीं आती थी। विकारग्रस्त अथवा व्याधि-पीड़ित रोगी के लिये महापुरुषों ने निद्रा को माता के समान कहा है। जिसको निद्रा उचित रूप से आती हो और क्षुधा ठीक लगती हो, उसे वैद्य डाक्टरों की क्या आवश्यकता है अर्थात् वह रोगी नहीं स्वस्थ है। जिसको किसी प्रकार का विकार नहीं है उसे ठीक समय पर अवश्य निद्रा आती है। कहा भी है—

ब्रह्मचर्यरतेर्ग्राम्यसुखनिस्पृहचेतसः ।
निद्रासन्तोषतृप्तस्य स्वकालं नातिवर्तते ॥

जो मनुष्य ब्रह्मचारी अथवा सदाचारी है, विषय भोग से निःस्पृह है और सन्तोष से तृप्त है उसको समय पर निद्रा नाश के कारण निम्न प्रकार से लिखे हैं।

कायस्य शिरसश्चैव विरेकश्छर्दनं भयम् ।
चिन्ता क्रोधस्तथा धूमो व्यायामरक्तमोक्षणम् ॥५५॥

शिर और शरीर का विरेचन (जुलाब), वमन, भय, चिन्ता, क्रोध, धूवां, बहुत अधिक परिश्रम अर्थात् शक्ति से अधिक व्यायाम जिससे सारा शरीर बहुत बुरी प्रकार से श्रान्त हो जाय और रक्तमोक्षण (खून निकलवाने) से निद्रा नाश होता है। इसी प्रकार—

उपवासोऽसुखा शय्या, सत्वौदार्यतमो जयः ।
निद्राप्रसंगमहितं वारयन्ति समुत्थितम् ॥५६॥

अर्थात् उपवास खराब शय्या (बिस्तर वा शयन स्थान) तमोगुण क्षीण हो जाए और उस पर विजय पाकर जिस व्यक्ति में सत्त्वगुण की अधिकता हो जाती है उसकी निद्रा का नाश हो जाता है। अथवा सात्विकवृत्तिप्रधान निद्रा को जीत लेता है जैसे अर्जुन ने भी तपस्या करके निद्रा को जीत लिया था। अतः वह "गुडाकेश" निद्रा का स्वामी (विजेता) कहलाया। इन कारणों से निद्रा दूर भाग जाती है। अतः—

एत एव च विज्ञेया निद्रानाशस्य हेतवः ।
कार्यकालो विकारश्च प्रकृतिर्वायुरेव च ॥५७॥

उपरिलिखित कारणों के साथ कार्य में लगे रहना जैसे पं० गुरुदत्त विद्यार्थी ने किया था। वृद्धावस्था, रोगविशेष, स्वभाव तथा वात वा वायु वृद्धि आदि भी निद्रा नाश के कारण माने जाते हैं। अब पाठक भलीभांति निद्रा के हेतु तथा निद्रानाश के कारणों को समझ गए होंगे, इनकी विषेश व्याख्या की आवश्यकता नहीं।

निद्रा किस को नहीं आती

कुतो निद्रा दरिद्रस्य परप्रेष्यकरस्य च ।
परनारीप्रसक्तस्य परद्रव्यहरस्य च ।

दरिद्र, पराधीन, परस्त्री और पराये धन में आसक्त अर्थात् जार व्यभिचारी और चोर को क्या कभी सुख की नींद आ सकती है ?

सुख की निद्रा

सुखं स्वपित्यनृणवान् व्याधिमुक्तश्च यो नरः ।
सावकाशस्तु यो भुङ्क्ते यस्तु दारैर्न शङ्कितः ॥

जिसके ऊपर किसी प्रकार का ऋण नहीं, जो व्याधिमुक्त (रोगरहित) है, जो आवश्यकतानुसार पर्याप्त भोजन करता है और

जो स्त्री में आसक्त नहीं अर्थात् ब्रह्मचारी है, सब देवियों को माता बहन समझता है, वह सुख की नींद सोता है।

निद्राजनक योग

यदि किसी भी कारण किसी व्यक्ति की निद्रा का नाश हो तो वह निम्न शास्त्रीय उपाय करे—

अभ्यंगोत्सादनं स्नानं शाल्यन्नं सदधिक्षीरं स्नेहो—मनः सुखम् ।५२।
मनसोऽनुगुणा गन्धाः शब्दा संवाहनानि च ।
चक्षुषस्तर्पणं लेपः शिरसो वदनस्य च ।।५३।।
स्वास्तीर्णंशयनं वेश्मसुखं कालस्तथोचितः ।
आनयन्त्यचिरान्निद्रां प्रनष्टा या निमित्ततः ।।५४।।

शरीर पर तैलादि का मर्दन, उबटन लेप, स्नान शालि चावल दही दूध घृतादि स्नेह, मन को सुख देनेवाले कर्म, मनमोहक सुगन्धित द्रव्य, श्रोत्रप्रिय मधुर शब्द शरीर का मसलना तथा दबाना, नेत्रों का सन्तर्पण और मस्तिष्क पर सुगन्धित लेप, शिर पर जल की धारा डालना, सुखदायक शयनस्थान वा विष्टर (बिस्तर), घर का सुख, समुचित शयन काल यह सब शीघ्र निद्रा लाने के उपाय हैं। जिन्हें निद्रा न आती हो, उनका यह रोग उपर्युक्त उपायों से नष्ट हो सकता है।

अधिक निद्रा को दूर करने के उपाय

पतले कृशकाय व्यक्ति की अपेक्षा स्थूलकाय अधिक मेद (चर्बी) वाले व्यक्ति को अथवा तमोगुणी व्यक्ति को अधिक निद्रा आती है। वह कार्य करने में असमर्थ हो जाता है तथा अन्य कई कारणों से भी किसी किसी को अधिक निद्रा सताती है। इसे दूर करने के सुश्रुत में यह उपाय लिखे हैं—

निद्रातियोगे वमनं हितं संशोधनानि च ।
लङ्घनं रक्तमोक्षश्च मनोव्याकुलनानि च ।।४७।।

निद्रा के अति योग में वमन, संशोधन, लंघन (उपवास), रक्तमोक्षण (खून निकालना) तथा मन को व्याकुल करने वाले साधन उत्तम हैं।

निद्रा का अर्थ

निद्रा शब्द निन्दि वा निदि धातु जो कुत्सित अर्थ में है इससे 'निन्देर्नल्लोपश्च' (उणादि २।१७) सूत्र से नलोप तथा रक् प्रत्यय करने पर निद्रा शब्द की सिद्धि होती है। शयन, स्वाप, स्वप्न, सुषुप्ति आदि इसके पर्यायवाची शब्द हैं।

कालाग्नी रुद्रपत्नी च निद्रा सा सिद्धयोगिनी ।
सर्वलोकाः समाच्छन्ना यया योगेन रात्रिषु ।। (तन्त्र)

पौराणिक भाई इसके कालाग्नि, रुद्रपत्नी, (शिवजी की पत्नी पार्वती) सिद्ध योगिनी आदि निद्रा के पर्यायवाची और नाम मानते हैं। रात को योग द्वारा सर्वप्राणियों को आच्छन्न किये रहती है।

महर्षि पतञ्जलि ने योग दर्शन में इसे चित्त की एक वृत्ति माना है जो उपासक को उपासना में बाधक के रूप में तंग करती है। क्योंकि तम वा अज्ञान ही निद्रावृत्ति का आलम्बन है। अतः जब अन्धकारमय वा अज्ञानमय निद्रावृत्ति का उदय वा प्रभाव होता है तब सत्त्वगुण, जो ज्ञान का प्रकाशक है वह सर्वथा तमोगुण के निद्रारूप अज्ञान से दब जाता है अत उस समय ज्ञान का अभाव होने से उपासक निद्रा वृत्ति के वशीभूत हो जाता है और उसकी साधना बिगड़ जाती है, अतः निद्रा शब्द की कुत्सित अर्थ में सिद्धि की है। क्योंकि यह चित्तवृत्ति अन्य प्रमाण आदि वृत्तियों के समान योगी वा साधक के जब तक सर्वथा वश में नहीं आती अथवा यह समझिये कि जब तक निद्रावृत्ति का सर्वथा निरोध नहीं होता, तब तक साधक की समाधि वा योग सिद्ध नहीं होता और बिना योग की सिद्धि के ब्रह्मप्राप्ति, आनन्द की अनुभूति, सब

दुःखों से छुटकारा अर्थात् परमपद मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती। इसलिये तमोगुण युक्त निद्रा को शास्त्रों ने पाप्मा वा पाप कहा है। और वैयाकरणों ने "या निन्दति यया वा सा निद्रा शयनं वा" कुत्सित अर्थ में इसकी सिद्धि की है। निद्रा अज्ञान की पराकाष्ठा है किन्तु निद्रा में किसी विषय का ज्ञान नहीं रहता यह उचित नहीं। उस समय अज्ञान विषय का ज्ञान वा अनुभूति रहती है। इसीलिये निद्रा-भंग होने पर निद्रा की अनुभूति वा ज्ञान अवश्य रहता है अत एव उठने पर "मैं बड़ी सुख की मीठी नींद सोया" अथवा "निद्रा अच्छी नहीं आई, स्वप्न ही आते रहे" इत्यादि अज्ञानरूपी निद्रावृत्ति का स्मरण करते हैं।

इस तमोगुण से उत्पन्न अज्ञानरूपी निद्रावृत्ति का निरोध करने के लिए ही ब्रह्मचारी, योगी, तपस्वी, तप, त्याग, अभ्यास वैराग्य आदि अनेक प्रकार के साधनों में अपना अमूल्य समय एवं शक्ति लगाते हैं। क्योंकि इस तमोगुणी निद्रावृत्ति को जीते बिना मनुष्य का कल्याण नहीं। निद्रा आदि वृत्तियों का निरोध करने के विषय में योगदर्शन में विस्तार से लिखा है। एतज्ज्ञानार्थं योगदर्शन का स्वाध्याय करें तथा पूर्ण लाभ उठाने के लिए वहां पर वर्णित साधनों का अभ्यास करें।

निद्रा का महत्त्व

निद्रायत्तं सुखं दुःखं पुष्टिः कार्श्यं बलाबलम्।
वृषता क्लीबता ज्ञानमज्ञानं जीवितं न च॥

(चरक सूत्र० अ० २१ श्लोक ३४)

सुख और दुःख पुष्टि और कृशता, बल और निर्बलता वृषता (पुंस्त्व) तथा क्लीबता (नपुंसकता), ज्ञान और अज्ञान एवं जीवन और मरण यह सब गुण दोष निद्रा के अधीन हैं।

सुखादि श्रेष्ठ फल उचित काल और मात्रा में सेवित निद्रा से

प्राप्त होते हैं तथा दुःखादि दुष्ट फल अनुचित काल वा मात्रा में सेवित निद्रा के फल हैं।

निद्रा के शुभ वा अशुभ फल के विषय में चरक में लिखा है-

अकालेऽतिप्रसङ्गाच्च न च निद्रा निषेविता।
सुखायुषी पराकुर्यात् कालरात्रिरिवापरा ॥३६॥
सैव युक्ता पुनर्युङ्क्ते निद्रा देहं सुखायुषा।
पुरुषं योगिनं सिद्ध्या सत्या बुद्धिरिवागता ॥३७॥

(चरक सूत्र० अ० २१)

अनुचित समय पर सेवित, बहुत अधिक मात्रा में ली हुई, सर्वथा न ली हुई निद्रा मनुष्य के सुख और आयु को काल रात्रि की भांति नष्ट कर देती है और वही निद्रा युक्तिपूर्वक उचित काल में तथा उचित मात्रा में सेवन की जाये तो जैसे योगी पुरुष सिद्धि को प्राप्त होकर सत्य बुद्धि (ऋतम्भरा प्रज्ञा) को प्राप्त कर लेता है उसी प्रकार समुचित रीति से निद्रा सेवन करनेवाला मनुष्य सुख और दीर्घायु को प्राप्त होता है।

ब्रह्मचारी को दिन में न सोने का उपदेश

वेदारम्भ संस्कार में पिता का अपनी सन्तान को ब्रह्मचर्य पालनार्थ उपदेश है। उस में २२ शिक्षाएं दी हैं। दिवा शयन-निषेध के विषय में भी उपदेश है। पिता कहता है—'ब्रह्मचार्यसि असौ' दिवा मा स्वाप्सीः' अर्थात् हे पुत्र "तू आज से ब्रह्मचारी है अतः दिन में शयन कभी मत कर।" यह उपदेश गोभिल गृह्यसूत्र में आया है। वैसे सामान्यरूप से ब्रह्मचारी ही क्या सभी के लिए दिन में सोने को हानिकारक समझ कर निषिद्ध और अधर्म माना है। महर्षि धन्वन्तरि इस विषय में सुश्रुत में निम्न प्रकार से लिखते हैं—

"विकृतिर्हि दिवास्वप्नो नाम, तत्र स्वपतामधर्मः सर्वदोष-

प्रकोपश्च, तत्प्रकोपाच्च कासश्वासप्रतिश्यायशिरोगौरवांगमर्दारोचकज्वराग्निदौर्बल्यानि भवन्ति।" (सुश्रुत शरीर० अ० श्लोक ३८)

दिन में सोना एक विकार (दोष) है। दिन में सोने से अधर्म (पाप) होता है। वात, पित्त, कफ सभी दोष कुपित हो जाते हैं, और दोषों के कुपित होने से कास (खांसी), श्वास (दमा), प्रतिश्याय (जुकाम), शिर में भारीपन, अंगों का टूटना, अरुचि, ज्वर, जठराग्नि की दुर्बलता आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। दिन सोने के लिए नहीं जागरण अथवा कार्य करने के लिए है।

रात्रि में जागरण से हानियाँ

"रात्रावपि जागरितवतां वातपित्तनिमित्तास्त एवोपद्रवा भवन्ति।" (सुश्रुत शरीर० अ० ४ श्लोक ३८)

रात्रि में जागने से भी वात पित्तजन्य उपरिलिखित कास श्वासादि रोगों की उत्पत्ति होती है। अतः रात्रि में जागरण और दिन में शयन दोनों ही वर्जित हैं। सामान्य नियम यही है, किसी विशेष अवस्था में इस के अपवाद हैं। महर्षि धन्वन्तरि जी लिखते हैं—

"सर्वर्तुषु दिवास्वापः प्रतिषिद्धोऽन्यत्र ग्रीष्मात्"

सभी ऋतुओं में दिन में सोना वर्जित है। केवल ग्रीष्म (गर्मी) ऋतु में दिन बड़े होते हैं अतः किन्हीं विशेष अवस्थाओं में और विशेष व्यक्तियों के लिए दिन में शयन की आज्ञा दी है ब्रह्मचारी के लिए तो ग्रीष्म काल में भी दिन में सोना सर्वथा वर्जित है। इस विषय में सुश्रुत में लिखा है—

"प्रतिषिद्धेष्वपि तु बालवृद्धस्त्रीकर्शितक्षतक्षीणमद्यनित्ययानवाहनाध्वकर्मपरिश्रान्तानामभुक्तवतां मेदःस्वेदकफरसरक्तक्षीणा-

नामजीर्णिनां च मुहूर्तं दिवास्वप्नमप्रतिषिद्धम्"।

(शरीरस्थान ४।३८)

दिन में सोना निषिद्ध है यही नियम है, इस के अपवाद ये हैं :—छोटा बालक (शिशु), वृद्ध (७० वर्ष से अधिक आयु का), व्यभिचार के कारण ब्रह्मचर्य नाश से हुआ कृश (निर्बल) व्यक्ति, यक्ष्मा का रोगी, किसी भी कारण से क्षीण, मद्यपान करनेवाले पापी, वाहन (घोड़े आदि की सवारी), यान (रथ, रेल, गाड़ी आदि) यात्रा व परिश्रम से थके हुये, भोजन करनेवाले (भूखे), मेद (चर्बी) स्वेद, कफ, रक्त रसादि से क्षीण हुए केवल रोगी मनुष्य के लिए दिन में मुहूर्त भर बहुत(थोड़ी देर) सोने की आज्ञा शास्त्रों ने दी है, रोगादि के कारण विवशतावश। अतः यह निषेध में अपवाद है। राजनिघण्टु आदि ग्रन्थों में मुहूर्त को दिन और रात के बीसवें भाग के समान अर्थात् दो घड़ी वा ४८ मिनट माना है, अतः किसी भी अवस्था में चाहे कोई कितना ही श्रान्त वा रोगी हो यदि ग्रीष्म काल में भी दिन में ४८ मिनट वा दो घड़ी से अधिक सोवेगा तो हानि उठायेगा। ब्रह्मचारी के लिए महर्षि दयानन्द जी अपने ग्रन्थ संस्कार विधि में निम्न प्रकार से लिखते हैं—

"दो दण्ड से अधिक सोना वर्जित है। रात को यदि जगे हो तो जितने समय जगे हो उस से आधे समय तक ही दिन में शयन करना चाहिये। नहीं तो विकार (रोगों की उत्पत्ति) होती है, और दिन में सोनेवाले को कभी सुख और दीर्घायु की प्राप्ति नहीं होती। जो निद्रा को वश में कर लेते हैं। वह सुखी हो दीर्घायु को प्राप्त होते हैं।

चरकशास्त्र में सुश्रुत के समान ही दिवा-शयन से सब दोषों का कुपित होना माना है और गर्मी में भी कुछ व्यक्तियों के लिए दिन में निद्रा लेना सर्वथा वर्जित किया है।

मेदस्विनः स्नेहनित्याः श्लेष्मलाः श्लेष्मरोगिणः ।
दूषीविषार्ताश्च दिवा न शयीरन् कदाचन ।

जो मनुष्य मेद (चर्बी) वाले घृतादि स्नेह सेवन करनेवाले, कफप्रधान प्रकृतिवाले, कफ के रोगवाले, दूषीविष से पीड़ित हों उन को किसी काल में भी दिन में नहीं सोना चाहिए । दिन में सोने के कुछ और अधिक दोष चरक शास्त्र में लिखे हैं—

स्मृतिबुद्धिप्रमोहाश्च संरोधः स्रोतसां ज्वरः ।
इन्द्रियाणामसामर्थ्यं विषवेगप्रवर्तनम् ॥४८॥
भवेन्नृणां दिवास्वप्नस्याहितस्य निषेवणात् ।
तस्माद्धिताहितं स्वप्नं बुद्ध्वा स्वप्यात् सुखं बुधः ॥४९॥

दिवाशयन से स्मृति और बुद्धि का नाश, स्रोतों का अवरोध, ज्वर, इन्द्रियों में निर्बलता, यदि कभी स्थावर वा जंगम (सर्प आदि के दंश का विष) हो तो उस के वेग की प्रवृत्ति से उद्भव हो जाते हैं। इसलिए बुद्धिमान् मनुष्य को उचित है कि निद्रा के विषय में उचित-अनुचित, हित-अहित का ज्ञान करके दिवाशयन से दूर रहे ।

दिन में शयन वेदाज्ञा के विरुद्ध

उद्यन्त्सूर्य इव सुप्तानां द्विषतां वर्च आददे ।
(अथर्ववेद ७।१३।२)

जो सूर्योदय के पश्चात् अथवा दिन में सोता है, उस सोनेवाले के तेज को उदय होता हुआ सूर्य हर लेता है, जैसे कि अपने शत्रुओं के तेज को एक तेजस्वी पुरुष हर लेता है । जो सूर्योदय के पश्चात् वा दिन में सोयेगा तो स्वप्नदोषादि विकारों से उस सोनेवाले का ब्रह्मचर्य नष्ट हो जायेगा, और वीर्यहीन व्यक्ति में तेज वा ओज फिर कहां से आयेगा । जब तेज ही नहीं तो तेजहीन व्यक्ति का जीवन संसार में निरर्थक ही है । अतः वेद की आज्ञा मानकर दिन

में ब्रह्मचारी क्या किसी भी व्यक्ति को नहीं सोना चाहिए ।

निद्रा नाश के कारण

सुश्रुत में निद्रानाश के कारण निम्न प्रकार से लिखे हैं—

निद्रनाशोऽनिलात् पित्तान्मनस्तापात् क्षयादपि ।
सम्भवत्यभिघाताच्च प्रत्यनीकैः प्रशाम्यति ॥४२॥

वायु और पित्त के कुपित होने से वा अधिकता से, मन के सन्ताप से, रसादि धातुओं की क्षीणता से, चोट आदि के लगने से नींद नहीं आती अर्थात् इन विपरीत कारणों से निद्रा नहीं आती । इनको दूर करने से निद्रा आ जाती है ।

निद्रा के उपाय

निद्रानाशेऽभ्यंगयोगो मूर्ध्नि तैलनिषेवणम् ।
गात्रस्योद्वर्तनं चैव हितं संवाहनानि च ॥४३॥

निद्रा न आती हो तो शरीर पर तैल की मालिश, सिर पर विशेष रूप से तैल का मर्दन, अङ्गों पर उबटन करना, शरीर का संवाहन अर्थात् दबाना आदि उत्तम उपाय हैं । अन्य उपाय चरक के समान ही हैं, विशेष यह लिखा है—

द्राक्षासितेक्षु द्रव्याणामुपयोगो भवेन्निशि ॥४५॥
शयनासनयानानि मनोज्ञानि मृदूनि च ।
निद्रानाशे तु कुर्वीत तथाऽन्यान्यपि बुद्धिमान् ॥४६॥

रात्रि में द्राक्षा, मिश्री, ईख आदि द्रव्यों का उपयोग करे । शय्या आसन एवं सवारी कोमल और मन के अनुकूल बनाये । जिसको निद्रानाश का रोग हो वह यह तथा अन्य उपाय बुद्धि से विचार कर करे ।

भोजन के पश्चात् शयन

शयन से दो तीन घण्टे पहले भोजन करना चाहिये और एक

प्रहर रात्री के बीतने पर निद्रा लेना उचित माना है। आठ वा दश बजे के मध्य सोकर दो वा चार बजे के बीच में जागना उचित है। रात्रि के आठ वा दश बजे के समय की अपेक्षा प्रातःकाल का दो से चार बजे का समय अधिक उपयोगी हुआ करता है। भारतीय ही नहीं, योरोप के विद्वानों का भी यही मत है।

मध्यरात्रि से पूर्व की निद्रा के महत्त्व के विषय में एक पाश्चात्य विद्वान् जार्ज हर्बट लिखते हैं—

"One hours sleep before midnight is worth three afterwards."

अर्थात् आधी रात से पूर्व की एक घण्टे की निद्रा उसके पश्चात् की तीन घण्टे की निद्रा के समान है। इस में कारण स्पष्ट है, रात्रि का समय दिन भर कार्य करने के कारण श्रान्ति (थकावट) का समय है और प्रातः काल का समय रात्रि भर निद्रा द्वारा विश्राम के पश्चात् होता है। मनुष्य का शरीर हृदय और मस्तिष्क पूर्ण स्वस्थ स्फूर्तियुक्त (तर व ताजा) होते हैं। अतः रात्रि में आठ और नौ बजे के मध्य सो जाना चाहिये और प्रातःकाल दो और चार बजे के मध्य उठ जाना चाहिये। शिशु तथा बालक छः से सात घण्टे तक सो सकते हैं। किन्तु किशोर और युवकों के लिए छः घण्टे सोना पर्याप्त है।

निद्रा-त्याग

चार दण्ड रहते निद्रा का त्याग करें—प्रातःकाल ४ बजे से पूर्व। रात्रि में शीघ्र सोने से ही प्रातःकाल शीघ्र उठ सकता है। रात्रि में ९ वा १० के मध्य सोने और ३ वा ४ के मध्य उठने से मनुष्य ब्रह्मचारी, दीर्घायु और श्रीमान् बनता है।

Early to bed and early to rise, makes a man healthy wealthy and wise.

किसी विद्वान् ने आंगल भाषा में यह उचित ही लिखा है :— उचित समय पर शयन अर्थात् दस बजे से पूर्व और उचित समय पर जागरण अर्थात् ० बजे से पूर्व मनुष्य को स्वस्थ, ऐश्वर्यशाली और चतुर बनाता है। प्रथम गुण जो स्वास्थ्य है उसकी प्राप्ति पर सब गुण प्राप्त हो जाते हैं। शास्त्रों में भी इसी प्रकार लिखा है—

"उत्थाय च पश्चिमे यामे कृतशौचः समाहितः।" (मनु) मनु जी के इस श्लोक का उद्धरण देते हुए महर्षि दयानन्द जी सत्यार्थ-प्रकाश में लिखते हैं "जब पिछली प्रहर रात्रि रहे तब उठ शौच और सावधान होकर परमेश्वर का ध्यान अग्निहोत्रादि नित्य कर्म करे। इसी प्रकार चतुर्थ समुल्लास में लिखते हैं—

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्माथौं चानुचिन्तयेत्। (मनु०) रात्रि के चौथे प्रहर अथवा चार घड़ी रात से उठे आवश्यक कार्य धर्मार्थ का अनुचिन्तन ईश्वर का ध्यान करे। भाव सत्र का यही है ३ वा ४ बजे के बीच में उठ जाये और दस बजे से पूर्व ही शयन करे।

निद्रा का स्थान

शुचौ देशे विविक्ते तु गोमयेनोपलिप्तके।
प्रागुदक्प्लावने चैव संविशेत्तु सदा बुधः ॥

दुर्गन्ध रहित, शुद्ध वायु वाला, प्रकाशमय शुद्ध पवित्र एकान्त स्थान जो गोमय से लिया हुआ हो, विष्टर भी शुद्ध पवित्र ऋतु के अनुकूल हो तो निद्रा बहुत शीघ्र और अच्छी आती है।

मांगल्यं कुम्भं च शिरःस्थाने निधापयेत्।
वैदिकैर्गारुडमन्त्रै रक्षां कृत्वा स्वपेत्ततः ॥

सोने से पूर्व सिराहने की ओर एक जलपूर्ण पात्र रखना चाहिये तथा वैदिक मन्त्रों का जाप करके सोना मंगलप्रद है।

कहां सोना निषिद्ध है

शून्यालय, निर्जन घर, श्मशान, वृक्ष के नीचे, चतुष्पथ,

महादेवगृह, पथरीली भूमि, धान्य, गौ, विप्र, देवता और गुरु के ऊपर शयन करना वर्जित है। इसके अतिरिक्त भग्नशयन, अशुचि, दुर्गन्धयुक्त शुद्ध-वायु रहित आर्द्र वस्त्र में, नग्नावस्था, खुले शिर से, खुले मैदान में तथा चैत्य वृक्ष के तले शयन वर्जित है।

शयन समय शिर किस ओर करें

अपने घर में पूर्व की ओर मस्तक करके सोना चाहिए। आयुष्कामी व्यक्ति दक्षिण की ओर मस्तक रखकर सोवे। प्रवास में पश्चिम की ओर मस्तक करना चाहिए। उत्तर दिशा में मस्तक करके सोना अत्यन्त हानिकारक है। पूर्व की ओर सिराहना करके सोने से धन प्राप्ति, दक्षिण की ओर आयु-वृद्धि, पश्चिम की ओर करने से प्रबल चिन्ता और उत्तर की ओर मस्तक करने से मृत्यु होती है। मुर्दा शरीर (शव) का शिर अन्त्येष्टि संस्कार के समय वैदिक रीत्यनुसार उत्तर दिशा में ही करते हैं।

यह इसका सूचक है कि उत्तर में शिर करने से आयु घटती है तथा शीघ्र मृत्यु होती है।

बिस्तर

ओढने के वस्त्र शुद्ध हल्के तथा बिछाने के कड़े (सख्त) सादे और स्वच्छ होने चाहियें।

शयनकाल में एक लंगोट ही ब्रह्मचारी अथवा सभी को रखना चाहिए। अच्छी निद्रा के लिए शरीर पर अधिक वस्त्र धारण करना उचित नहीं। वस्त्र से मुख ढक कर नहीं सोना चाहिये।

गोभिल गृह्यसूत्र में लिखा है तू ब्रह्मचारी है अतः तेरे लिए "उपरिशय्यां वर्जय" उपरिशय्या वर्जित है। खाट, शय्या, पलंग आदि पर कभी नहीं सोना। भूमि में शयन करना "भूमौ शय्या" भूमि वा धरती माता की गोद में शयन करने का आदेश शास्त्रों

का ब्रह्मचारी के लिए है। व्याकरण में "स्थण्डिलशायी" उदाहरण बहुत प्रसिद्ध है।

ब्रह्मचारी की खाट, चारपाई वा पलंग पर शयन करने की बात तो दूर रही, बैठने तक का शास्त्रों ने निषेध किया है। क्योंकि खाट पलंग आदि गृहस्थियों के लिए हैं। जिसे ब्रह्मचर्य की साधना करनी हो उसे सोना तो दूर रहा, चारपाई पर बैठना भी नहीं चाहिए। अष्टाध्यायी के 'खट्वा क्षेपे' (२।१।१५) सूत्र पर पतञ्जलि महाभाष्य में इस प्रकार लिखते हैं—

"कः क्षेपो नाम ? अधीत्य स्नात्वा गुरुभिरनुज्ञातेन खट्वाऽऽरोढव्या य इदानीमतोऽन्यथा करोति, स उच्यते—खट्वाऽऽरूढोऽयं जाल्मः। नातिव्रतवान्।

इसका अर्थ महर्षि दयानन्द जी निम्न प्रकार से करते हैं "अध्ययनसमाप्तिमकृत्वा गुरोराज्ञां त्यक्त्वा च यो गृहस्थाश्रमाविशति तस्य खट्वारूढ़ इति नाम।" क्षेप का निन्दा अर्थ है।

धर्म शास्त्रों का यह नियम है कि विद्या को यथावत् पढ़कर गुरु की आज्ञा के अनुसार लिखित नियम से स्नान करके समावर्तन संस्कार कर के गृहस्थ आश्रम में जाना चाहिए। जो कोई इस से उल्टा अर्थात् विद्या पूरी न हो और गुरु की आज्ञा भी न हो और गृहस्थाश्रम में जाता है, उस को खट्वारूढ़—सर्व प्रकार से निन्दा करने योग्य कहते हैं।

प्राचीन काल की यह पद्धति थी कि विद्यास्नातक होने के पश्चात् गुरु की आज्ञा से गृहस्थाश्रम में स्नातक प्रवेश करते थे और गृहस्थ में प्रवेश के पश्चात् ही खाट, चारपाई, पलंग आदि पर बैठने वा शयन करने की शास्त्रीय आज्ञा मिलती थी क्योंकि खाट वा पलंग गृहस्थ की वस्तु थी। ब्रह्मचारी सदैव भूमि पर आसन शयन आदि करता था। ब्रह्मचारी के लिए खाट घृणा की, न सेवन

करने योग्य वस्तु थी। खाट पर सोना तो दूर की बात थी, उस पर बैठने से भी सर्प के समान दूर से बचता था क्योंकि खाट गृहस्थी के लिए ही थी और अब भी गृहस्थी की हो वस्तु है।

जो आचार्य की आज्ञा के बिना ही गृहस्थी बनता अथवा गृहस्थ की वस्तु खाट का बैठने वा सोने के लिए सेवन करता है "धिक्कार है ऐसे नीच को" यह शास्त्र की दृष्टि में बहुत बड़ा नीच कर्म है। अतः ब्रह्मचारी को आचार्य की आज्ञा के बिना कभी गृहस्थी नहीं बनना चाहिए और न ही गृहस्थ की वस्तु खाट आदि का सेवन करना चाहिए।

खाट पर शयन क्यों निषिद्ध है ?

खाट वा पलंग रस्सियों निवार लोहे की जाली आदि के बने होते हैं। वे कितने भी सख्त हों कुछ न कुछ लचक ढीलापन उन में रहता ही है। पुराने होने पर सभी ढीले हो ही जाते हैं। इन पर सोने वालों की कमर की रीढ़ की हड्डी (मेरुदण्ड) सीधी नहीं रह सकती। मेरुदण्ड सभी का शयन समय ही नहीं जागृतावस्था में भी सीधा रहना चाहिए। मेरुदण्ड के सीधा रहने से ही प्राणायाम की सिद्धि, फुफ्फुस (फेफड़ों) का स्वस्थ सुन्दर सुदृढ़ होना, वृद्धावस्था में भी कमर का न झुकना आदि लाभ होते हैं। अतः ब्रह्मचारी क्या, अपना कल्याण चाहनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को खाट पलंग आदि झंझट से बचना चाहिए। खाट आदि में खटमलादि से जो कष्ट होता है वह पृथक् रहा। इसी कारण भारत के कितने ही प्रान्तों में लोग खाट आदि का प्रयोग नहीं करते हैं।

निद्रा से पूर्व

हाथ पांव शिर आदि धोना, विष्णु का स्मरण—वैष्णवी निद्रार्थ मन्त्रों का उच्चारण एवं ओ३म् का जाप करते हुए शयन करना चाहिए।

निद्रा से पूर्व मल मूत्र त्याग करके सोवे। जब तक अच्छी निद्रा न आये व्यर्थ बिछौने पर नहीं लेटना चाहिये। थोड़ी सी दौड़ अथवा कोई हल्का व्यायाम करने तथा ईश-भजन से निद्रा शीघ्र आ जाती है। रात्रि का भोजन हल्का अर्थात् मध्याह्न के भोजन से आधा होने से निद्रा ठीक आती है। रात्रि के भोजन और निद्रा में २ घण्टे का अन्तर न्यून से न्यून होना चाहिये। यदि इस से अधिक ढ़ाई तीन घण्टे हो तो और भी अच्छा है। स्वप्नदोष से बचने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है।

घुटने तक पैर तथा हाथ और शिर शीतल जल से धोकर सोने से स्वप्नदोषादि विकार भी नहीं सताते तथा निद्रा भी ठीक आती है। स्वप्नदोष के रोगी को पहिले अण्डकोष पर्याप्त शीतल जल से भलीभांति धोकर गीला करने से तथा मूत्रेन्द्रिय के अग्रभाग पर शीतल जल की धार छोड़ने से स्वप्नदोष आदि विकारों से छुटकारा पाने में सहायता मिलती है।

निद्रा लेते समय दीपक आदि जलता हुआ नहीं छोड़ना चाहिये। किसी विशेष अवस्था के अतिरिक्त उसे शान्त कर देना श्रेयस्कार है। दीपक की विषैली वायु कार्बन से हानि होती है, दीपक का प्रकाश निद्रा में बाधक होता है।

ब्रह्मचारी वा किसी भी व्यक्ति को सीधा-औंधा (उल्टा) मुंह को नीचे कर के नहीं सोना चाहिए। एक करवट, वह भी दाईं करवट सोना अच्छा है। जिसके उदर में विकार रहता हो वह वाम करवट सोये सीधा व उल्टा न सोये। मेखला की गांठ जो पीठ के पीछे होती है, वह इस में कुछ सहायक है।

निद्रा का समय

नवयुवकों को ६ घण्टे से अधिक शयन नहीं करना चाहिये। ९ वा १० बजे सो कर ३ वा ४ बजे उठ जाना चाहिये। प्रातःकाल

आंखें खुलने पर बिस्तर पर नहीं पड़े रहना चाहिये। निद्रा टूटने पर बिस्तर तुरन्त छोड़ देना चाहिये। जिसे निद्रा को जीतने की इच्छा हो वह सायंकाल अन्न खाना छोड़ देवे। ५ से ७॥ या ८ बजे तक जितना भी पहले कर सके थोड़ा सा गोदुग्ध का पान कर लेवे और आठ, नौ बजे के मध्य में सो जावे। फिर २ तथा ३ बजे के बीच उठ जावे।

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च॥

इसका अर्थ निम्न प्रकार से है—

रात्रि के चौथे पहर अथवा चार घड़ी रात से उठे, आवश्यक कार्य करके धर्म और अर्थ, शरीर के रोगों का निदान और परमात्मा का ध्यान करे, कभी अधर्म का आचरण न करे।

अतिशयन और अतिजागरण निषिद्ध है

अत्यन्तं स्नानं भोजनं निद्रां जागरणं निन्दां लोभमोहभयशोकान् वर्जय। गोभिलगृह्य सूत्र में पिता वेदारम्भ संस्कार के समय अपने पुत्र को ब्रह्मचारी बनाते समय उपदेश देता है "तू ब्रह्मचारी है अतः तू अधिक निद्रा तथा अधिक जागरण कभी मत कर"। यह दोनों ब्रह्मचारी के लिए हानिकारक हैं।

हयानामिव जात्यानामर्द्धरात्राधिशायिनाम्।
न हि विद्यार्थिनां निद्रा चिरं नेत्रेषु तिष्ठति॥

(याज्ञवल्क्य शिक्षा)

अर्थ—जिस प्रकार उत्तम जाति के घोड़ों का स्वभाव आधी रात्री से भी अधिक समय अर्थात् एक प्रहर २॥ या ३ घण्टे का सोने का होता है, उसी प्रकार सच्चे विद्यार्थी वा ब्रह्मचारी के नेत्रों में, निद्रा चिरकाल तक नहीं ठहरती अर्थात् अच्छा विद्यार्थी अल्पकाल तक सोता है।

ब्रह्मचारी सदैव अकेला सोवे

एक शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित्।
कामाद्धि स्कन्दयन् रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः॥

(मनुस्मृति २।१८०)

मनु जी का यह श्लोक महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में दिया है। अर्थ इस प्रकार है—सर्वत्र एकाकी (अकेला) सोवे, वीर्य स्खलित (नाश) कभी न करे, जो कामना से वीर्य स्खलित कर दे तो जानो कि अपने ब्रह्मचर्य व्रत का नाश कर दिया।

शिशु, बालक, किशोर और युवक किसी भी अवस्था का ब्रह्मचारी हो, सभी अवस्थाओं में पृथक् पृथक् ही सोना चाहिए। किसी के भी साथ सोने से अच्छे से अच्छे बालक भी मिट्टी में मिलते देखे गए हैं। अतः दो वा इस से भी अधिक को मिल कर एक बिस्तर पर किसी अवस्था में भी नहीं सोना चाहिए। किसी के साथ मिलकर शयन करने से हानि ही हानि है, लाभ कोई नहीं। मिल कर शयन करने से स्पर्श, एक दूसरे का दुर्गन्ध, उष्णता आदि की हानि तो अवश्य होती है। अतः किसी भी अवस्था में अपने से बड़े वा छोटे किसी के भी साथ ब्रह्मचारी क्या किसी को भी नहीं सोना चाहिए।

घर में माता पिता सगे भाइयों और सगी बहिनों को एक चारपाई वा एक बिस्तर पर सुला देते हैं। इन बालकों के एक साथ सोने से क्या हानि हो सकती है, इस की वे कल्पना भी नहीं कर सकते। इस का परिणाम ब्रह्मचर्य नाश अथवा सर्वनाश है, अतः सर्वदा अकेले ही शयन करने में कल्याण है, इस लिए इस नियम का बड़ी दृढ़ता से पालन करना चाहिए।

विद्यार्थी की श्वान निद्रा

काकचेष्टा बकोध्यानं श्वाननिद्रा तथैव च।
अल्पहारी गृहत्यागी विद्यार्थी पञ्चलक्षणम् ॥

विद्यार्थी के पांच लक्षण काक के समान चेष्टा, बगुले के समान ध्यान, कुत्ते के समान निद्रा, मिताहार और गृह से विरक्ति माने हैं।

विद्यार्थी और ब्रह्मचारो संस्कृत-साहित्य में पर्यायवाची हैं, कहा भी है—

"विद्यार्थं ब्रह्मचारी स्यात्"

विद्या प्राप्ति के लिए ब्रह्मचारी होना चाहिए अर्थात् ब्रह्मचारी ही यथार्थ में सच्चा विद्यार्थी होता है।

शयन से पूर्व और पश्चात् ईश-स्मरण

उपनिषद् में लिखा है—

"स्वप्नान्तं जागरितान्तंचोभौ येनानुपश्यति। महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति।" अर्थ— निश्चय से जो व्यक्ति शयन अर्थात् निद्रा की समाप्ति पर प्रातःकाल और जागरित अवस्था की समाप्ति अर्थात् शयन के समय रात्रि को श्रद्धापूर्वक सावधानी से उस महान् सर्वव्यापक परमात्मा का ध्यान करता है, वह किसी प्रकार के दुःख चिन्ता तथा शोक को प्राप्त नहीं होता है।

इस लिये इन दोनों समयों में सामान्यतया सभी मनुष्यों को और विशेषतया ब्रह्मचारी को उस परम पालक ओ३म् का अवश्यमेव उपरोक्त प्रकार से स्मरण करना चाहिये जिस से जागरित अवस्था से अतिरिक्त निद्राकाल के समय स्वप्न अवस्था में भी ब्रह्मचारी के शुद्ध पवित्र विचारों के कारण यदि स्वप्न आयें तो पवित्र ही आयें क्योंकि जागरित अवस्था में तो बहुत से युवक जैसे तैसे ही वीर्य रक्षा करने में सफल हो जाते हैं। किन्तु शयन-

काल में कुत्सित विचारों के कारण स्वप्नदोषादि विकारों से पीडित होकर ब्रह्मचर्य नाश से हानि उठाते हैं। जागरित अवस्था की अपेक्षा निद्राकाल में ब्रह्मचारी के लिये और भी अधिक सावधानी की आवश्यकता है अतः ब्रह्मचारी की वृत्ति वा विचार शयन से पूर्व सर्वथा सात्त्विक तथा पवित्र रहें और इन्हीं के कारण स्वप्न अवस्था में भी यदि स्वप्न आयें तो वे भी सात्त्विक और पवित्र हों इस के लिए यही आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति विशेषतया ब्रह्मचारी को शीतल जल से हाथ, पैर, मुख इत्यादि धोकर ऋषियों के आदेशानुसार निम्नलिखित शिव-संकल्प सूक्त के पवित्र वेदमन्त्रों का अर्थ सहित श्रद्धापूर्वक उच्चारण वा जप करना चाहिये।

शयन से पूर्व पठनीय मन्त्र

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिव सङ्कल्पमस्तु ।१।

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा राजन्! आपकी कृपा से (यत्) जो (दैवम्) आत्मा रहने वा जीवात्मा का साधन (दूरङ्गमम्) दूर जाने, मनुष्य को दूर तक ले जाने वा अनेक पदार्थों का ग्रहण करने वाला (ज्योतिषाम्) शब्द आदि विषयों के प्रकाशक श्रोत्र आदि इन्द्रियों को (ज्योतिः) प्रवृत्त करने हारा (एकम्) एक (जाग्रतः) जागृत अवस्था में (दूरम्) दूर दूर (उत्, एति) भागता है (उ) और (तत्) जो (सुप्तस्य) सोते हुए का (तथा, एव) उसी प्रकार (एति) भीतर अन्तःकरण में जाता है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) संकल्प विकल्पात्मक मन (शिवसङ्कल्पम्) कल्याणकारी धर्मविषयक इच्छावाला (अस्तु) हो ॥१॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा का सेवन और विद्वानों का संग करके अनेकविध सामर्थ्ययुक्त मन को शुद्ध करते

हैं जो जागृतावस्था के विस्तृत व्यवहार वाला है वही मन सुषुप्ति अवस्था में शान्त होता है। जो वेग वाले पदार्थों में अति वेगवान् ज्ञान के साधन होने से इन्द्रियों के प्रवर्तक मन को वश में करते हैं, वे अशुभ व्यवहार को छोड़ शुभ व्यवहार में मन को प्रवृत्त कर सकते हैं।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२॥

पदार्थः—हे परमेश्वर वा विद्वान्! जब आपके संग से (येन) जिस (अपसः) सदा कर्म धर्मनिष्ठ (मनीषिणः) मन का दमन करने वाले (धीराः) ध्यान करने वाले बुद्धिमान् लोग (यज्ञे) अग्निहोत्रादि वा धर्म संयुक्त व्यवहार व योग यज्ञ में और (विदथेषु) विज्ञान सम्बन्धी और युद्धादि व्यवहारों में (कर्माणि) अत्यन्त इष्ट कर्मों को (कृण्वन्ति) करते (यत्) जो (अपूर्वम्) सर्वोत्तम गुण, कर्म, स्वभाव वाला (प्रजानाम्) प्राणिमात्र के (अन्तः) हृदय में (यज्ञम्) पूजनीय वा संगत एकीभूत हो रहा है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मनन विचार करना रूप मन (शिवसंकल्पम्) धर्मेष्ठ (अस्तु) होवे ॥२॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिए कि परमेश्वर की उपासना सुन्दर विचार विद्या और सत्संग से अपने अन्तःकरण को अधर्माचरण से निवृत्त कर धर्म के आचरण में प्रवृत्त करें ॥२॥

यत् प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्नऽऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥३॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर वा परमयोगिन् विद्वन्! आपके जताने से (यत्) जो (प्रज्ञानम्) विशेषकर ज्ञान का उत्पादक बुद्धिरूप (उत्) और भी (चेतः) स्मृति का साधन (धृतिः) धैर्यस्वरूप (च) और लज्जादि कार्यों का हेतु (प्रजासु) मनुष्यों के (अन्तः) अन्तः

करण में आत्मा का साथी होने से (अमृतम्) नाशरहित (ज्योतिः) प्रकाशकरूप (यस्मात्) जिससे (ऋते) विना (किम्, चन) कोई भी (कर्म) काम (न, क्रियते) नहीं किया जाता (तत्) वह (मे) मुझ जीवात्मा का (मनः) सब कर्मों का साधन रूप मन (शिवसंकल्पम्) कल्याणकारी परमात्मा में इच्छा रखनेवाला (अस्तु) हो ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! जो अन्तःकरण, बुद्धि, चित्त और अहंकार रूप वृत्तिवाला होने से चार प्रकार से भीतर प्रकाश करने वाला, प्राणियों के सब कर्मों का साधक अविनाशी मन है, उसको न्याय और सत्य आचरण में प्रवृत्त कर पक्षपात अन्याय और अधर्माचरण से तुम लोग निवृत्त करो ॥३॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! (येन) जिस (अमृतेन) नाशरहित परमात्मा के साथ युक्त होने वाले मन से (भूतम्) व्यतीत हुआ (भुवनम्) वर्तमान काल सम्बन्धी और (भविष्यत्) होनेवाला (सर्वम्, इदम्) यह सब त्रिकालस्थ वस्तुमात्र (परिगृहीतम्) सब ओर से गृहीत होता अर्थात् जाना जाता है (येन) जिस से (सप्तहोता) सात मनुष्य होता वा पांच प्राण छठा जीवात्मा और अव्यक्त सातवां ये सात लेने देने वाले जिस में हों वह (यज्ञः) अग्निष्टोमादि वा विज्ञानस्वरूप व्यवहार (तायते) विस्तृत किया जाता है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) योगयुक्त चित्त शिवसंकल्पम् मोक्षरूप संकल्पवाला (अस्तु) होवे ॥४॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! जो चित्त योगाभ्यास के साधन और उपसाधनों से सिद्ध हुआ भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों काल का ज्ञाता सब सृष्टि का जानने वाला कर्म उपासना और ज्ञान का साधक

है उसको सदा ही कल्याण में प्रिय करो ॥४॥

यस्मिन्नृच साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मन शिवसङ्कल्पमस्तु ॥५॥

पदार्थः— (यस्मिन्) जिस मन में (रथनाभाविव अराः) जैसे रथ के पहिये के बीच के काष्ठ में अरा लगे होते हैं वैसे (ऋचः) ऋग्वेद (साम) साम वेद (यजूंषि) यजुर्वेद स्थित हैं (यस्मिन्) जिस में (प्रजानाम्) प्राणियों का (सर्वम्) समग्र (चित्तम्) सर्व पदार्थ सम्बन्धी ज्ञान (ओतम्) सूत्र में मणियों के समान संयुक्त है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसङ्कल्पम्) कल्याणकारी वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रचार रूप संकल्प वाला (अस्तु) हो ।५॥

भावार्थः— हे मनुष्यो ! तुम लोगों को चाहिये, जिस मन के स्वस्थ रहने में ही वेदादि विद्याओं का आधार और जिस में सब व्यवहारों का ज्ञान एकत्र होता है उस अन्तःकरण को विद्या और धर्म के आचरण से पवित्र करो ॥५॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनऽइव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मन शिवसंकल्पमस्तु ॥६॥

पदार्थः— (यत्) जो मन (सुषारथिः) जैसे सुन्दर चतुर सारथि गाड़ीवान् (अश्वानिव) लगाम से घोड़ों को सब ओर ले चलाता है वैसे (मनुष्यान्) मनुष्यादि प्राणियों को(नेनीयते) शीघ्र इधर उधर घुमाता है और (अभाशुभिः) जैसे रस्सियां से (वाजिनः) वेगवाले घोड़ों को सारथि वश में करता वैसे नियम में रखता (यत्) जो (हृत्प्रतिष्ठम्) हृदय में स्थित (अजिरम्) विषयादि में प्रेरक वा वृद्धादि अवस्थारहित और (जविष्ठम्) अत्यन्त वेगवान् है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) मंगलमय नियम में इष्ट (अस्तु) होवे ॥६॥

भावार्थः— इस मन्त्र में दो उपमालंकार हैं। जो मनुष्य जिस

पदार्थ में आसक्त है, वही बल से सारथि घोड़ों को जैसे वैसे प्राणियों को ले जाता और लगाम से सारथि घोड़ों को जैसे वैसे वश में रखता, सब मूर्खजन जिसके अनुकूल वर्तते और विद्वान् अपने वश में करते हैं जो शुद्ध हुआ सुखकारी और अशुद्ध हुआ दुःखदायी, जो जीता हुआ सिद्धि को और न जीता हुआ असिद्धि को देता है, वह मन मनुष्यों को वश में रखना चाहिए ॥६॥

(यजुर्वेद अ० ३४ महर्षि दयानन्द कृतभाष्य से उद्धृत)

अग्ने त्वं सुजागृहि वयं सुमन्दिषीमहि ।
रक्षणोऽअप्रयुच्छन् प्रबुधे नः पुनस्कृधि ॥ यजु०

पदार्थ : (अग्ने) जो अग्नि (प्रबुधे) जगने के समय (सुजागृहि) अच्छे प्रकार जगाता वा जिस से (वयम्) जग के कर्मानुष्ठान करनेवाले हम लोग (सुमन्दिषीमहि) आनन्दपूर्वक सोते हैं जो (अप्रयुच्छन्) प्रमादरहित होके (नः) प्रमादरहित हम लोगों की (रक्ष) रक्षा तथा प्रमादसहितों को नष्ट करता और जो (नः) हम लोगों के साथ (पुनः) बार बार इसी प्रकार (कृधि) व्यवहार करता है, उसको युक्ति के साथ सब मनुष्यों को सेवन करना चाहिए।

भावार्थ :—मनुष्यों को जो अग्नि, सोने, जागने, जीने तथा मरने का हेतु है, उसका युक्ति से सेवन करना चाहिए।

(यजुर्वेद अ० म० १४ महर्षि दयानन्द कृत भाष्य से उद्धृत)

प्रातःकाल प्रार्थना के मन्त्र

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातस्सोममुत रुद्रं हुवेम ॥१॥

अर्थ :—हे ! स्त्री पुरुषो ! जैसे हम विद्वान् उपदेशक लोग (प्रातः) प्रभात वेला में (अग्निम्) स्वप्रकाशस्वरूप (प्रातः) (इन्द्रम्) परमैश्वर्य के दाता और परमैश्वर्ययुक्त (प्रातः) (मित्रावरुणा)

प्राण उदान के समान प्रिय और सर्वशक्तिमान् (प्रातः) (अश्विना) सूर्य चन्द्र को जिस ने उत्पन्न किया है उस परमात्मा की (हवामहे) स्तुति करते हैं, और (प्रातः) (भगम्) भजनीय सेवनीय ऐश्वर्ययुक्त (पूषणम्) पुष्टिकर्त्ता (ब्रह्मणस्पतिम्) अपने उपासक, वेद और ब्रह्माण्ड के पालन करने हारे (प्रातः) (सोमम्) अन्तर्यामी प्रेरक (उत) और (रुद्रम्) पापियों को रुलाने हारे और सर्वरोगनाशक जगदीश की (हुवेम) स्तुति प्रार्थना करते हैं, वैसे प्रातः समय तुम लोग भी किया करो ॥१॥

प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥२।

अर्थ :—(प्रातः) पांच घड़ी रात्रि रहे (जितम्) जयशील (भगम्) ऐश्वर्य के दाता (उग्रम्) तेजस्वी (अदितेः) अन्तरिक्ष के (पुत्रम्) सूर्य की उत्पत्ति करने और (यः) जोकि सूर्यादि लोकों को (विधर्ता) विशेष करके धारण करने हारा (आध्रः) सब ओर से धारण कर्त्ता (यं चिद्) जिस किसी का भी (मन्यमानः) जानने हारा (तुरश्चित्) दुष्टों का भी दण्डदाता और (राजा) सबका प्रकाशक है, (यम्) जिस (भगम्) भजनीय स्वरूप को (चित्) भी (भक्षीति) इस प्रकार सेवन करता हूँ, और इसी प्रकार भगवान् परमेश्वर सबको (आह) उपदेश करता है कि तुम, जो मैं सूर्यादि जगत् का बनाने और धारण करने हारा हूँ उस मेरी उपासना किया करो और मेरी आज्ञा में चला करो, जिस से तुम लोग सदा उन्नतिशील रहो, इस से (वयम्) हम लोग उसकी (हुवेम) स्तुति करते हैं ।२॥

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः।
भग प्रणो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥३॥

अर्थ—हे (भग) भजनीय स्वरूप (प्रणेतः) सबके उत्पादक सत्याचार में प्रेरक (भग) ऐश्वर्यप्रद (सत्यराधः) सत्य धन को देने

हारे (भग) सत्याचरण करने हारों को ऐश्वर्य दाता आप परमेश्वर (नः) हम को (इमाम्) इस (धियम्) प्रज्ञा को (ददत्) दीजिये और उसके दान से हमारी (उदव) रक्षा कीजिये, हे (भग) आप (गोभिः) गाय आदि और (अश्वैः) घोड़े आदि उत्तम पशुओं के योग से राज्यश्री को (नः) हमारे लिये (प्रजनय) प्रकट कीजिये, हे (भग) आप की कृपा से हम लोग (नृभिः) उत्तम मनुष्यों से (नृवन्तः) बहुत मनुष्य वाले (प्र स्याम) अच्छे प्रकार होवें ॥३॥

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम्।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥४॥

अर्थ—हे भगवान् ! आप की कृपा (उत) और अपने पुरुषार्थ से हम लोग (इदानीम्) इस समय (प्रपित्वे) प्रकर्षता, उत्तमता की प्राप्ति में (उत) और (अह्नाम्) इन दिनों के (मध्ये) मध्य में (भगवन्तः) ऐश्वर्ययुक्त शक्तिमान् (स्याम) होवें, (उत) और हे (मघवन्) परमपूजित असंख्य धन देने हारे ! (सूर्यस्य) सूर्य लोक के (उदिता) उदय में (देवानाम्) पूर्ण विद्वान् धार्मिक आप लोगों की (सुमतौ) अच्छी उत्तम प्रज्ञा (उत) और सुमति में (वयम्) हम लोग (स्याम) सदा प्रवृत्त रहें ॥४॥

भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुर एता भवेह ॥५॥

अर्थ—हे (भग) सकलैश्वर्यसम्पन्न जगदीश्वर, जिस से (तम्) उस (त्वा) आपकी (सर्वः) सब सज्जन (इज्जोहवीति) निश्चय करके प्रशंसा करते हैं (सः) सो आप हे (भग) ऐश्वर्यप्रद (इह) इस संसार और (नः) हमारे गृहाश्रम में (पुर एता) अग्रगामी और आगे-आगे सत्य कर्मों में बढ़ाने हारे (भव) हूजिये और जिस से (भग एव) ऐश्वर्ययुक्त और समस्त ऐश्वर्य के दाता होने से आप ही हमारे (भगवान्) पूजनीयदेव (अस्तु) हूजिये, (तेन) उसी हेतु

से (देवाः वयं) हम विद्वान् लोग (भगवन्तः) सकलैश्वर्यसम्पन्न होके सब संसार के उपकार में तन, मन और धन से प्रवृत्त (स्याम) होवें ॥५॥ (संस्कार विधि गृहाश्रम प्रकरण से उद्धृत)

इन मन्त्रों की विशेष व्याख्या यजुर्वेदभाष्य अध्याय ३४ के मन्त्र ३४ से ३८ तक तथा ऋग्वेदभाष्य के मण्डल ७ के सूक्त ४१ में देख सकते हैं।

निद्रा के नियमों के विषय में स्वामी श्रद्धानन्द जी निम्न प्रकार से लिखते हैं—

शयन और जागरण के विषय में ऐक बात का अवश्य स्मरण रखना चाहिये यदि बिस्तर पर लेटने के पश्चात् निद्रा तुरन्त न आवे तो देखो कि आपने शयन से पूर्व हाथ पैर इत्यादि धोये थे या नहीं, यदि न धोये हों तो हाथ पैर और मुख धोकर अंगोछे से पूंछ डालो। यदि इतना करने पर भी नींद न आवे तो पांच मिनट भ्रमण करके लेट जाओ फिर निद्रा आजाएगी। यदि कभी इस पर भी नींद न आवे तो बिस्तर पर लेट कर लम्बे-लम्बे श्वास लेने लगो और चारों ओर से मन को हटा कर अपना मन ओ३म् के जप में लगा दो उसी समय निद्रा आ जायेगी। वे निद्रा न आने का द्वितीय कारण यह लिखते हैं। "यदि शयन से पूर्व सायंकाल का भोजन पचाने के लिए न्यून से न्यून ढाई घण्टे न दिये जायें तो निद्रा भली प्रकार से नहीं आ सकती। अतः सब आर्य घरानों में सायंकाल के भोजन का समय सात बजे से आठ बजे तक होना चाहिये। इस नियम का पालन करने से घर के सभी स्त्री और पुरुष रोगों से बचे रहेंगे। शयन के इस नियम के साथ जागरण का भी यह नियम होना चाहिये कि जब प्रातः नींद खुले उसी समय उठ कर बैठ जाओ। प्रातः जागते हुए बिस्तर पर लेटे रहने से बुरे प्रकार के दूषित स्वप्न दिखलाई देते हैं और मन में बड़ा कोलाहल

होता है। शरीर का मन के साथ बड़ा गहरा सम्बन्ध है। यदि शरीर स्वस्थ और स्फूर्ति युक्त न हो तो मन भी प्रमादी और आलसी रहता है। यदि कभी निद्रा घण्टा आध घण्टा पूर्व भी खुल जाये तो बिस्तर पर बैठ कर ईश स्मरण करके अपने नित्य कर्म में लग जाओ।" स्वा० श्रद्धानन्द जी ने इस विषय में गृहस्थियों का कर्त्तव्य इस प्रकार लिखा है—

"शयन करने के समय से पूर्व प्रत्येक माता का यह धर्म है कि अपने सब बच्चों के हाथ पाँव मुंह धोकर उनसे ईश्वरोपासना के मन्त्रों का उच्चारण करवाके सन्तानों को पहले से ही शिक्षा दी जावे कि वे शयन से पूर्व सभी बड़े बूढ़ों को श्रद्धापूर्वक नमस्ते करें। इसके पश्चात् माता देवी के चरण स्पर्श कर नमस्ते करें। माता प्रेम पूर्वक उनको आशीर्वाद देकर सुला देवे।"

"गुरुकुलों में भी ब्रह्मचारियों को अपने गुरुओं व अध्यापकों तथा अपने से अन्य बड़े व्यक्तियों और अपने से बड़े सहपाठियों से भी परस्पर नमस्ते कहने में कभी संकोच व आलस्य न करें।" स्वा० श्रद्धानन्द जी महाराज अभिवादन के महत्त्व पर इस प्रकार लिखते हैं—

"मुझे अभिवादन बड़ों को नमस्ते कहने के विषय में अधिक लिखने की आवश्यकता है। ऋषि दयानन्द का उपदेश है कि गृहस्थी स्त्री पुरुष जब जब दिन में मिलें तब-तब ही नमस्ते पूर्वक अभिवादन करें। इस नियम का पालन आर्यसमाज में बहुत ही न्यून किया जाता है। कारण यही प्रतीत होता है कि जिन पुरुषों को बाल्यकाल से अभिवादन करने का स्वभाव न हो उन को बड़ी आयु में परस्पर एक दूसरे को सत्कार के नियम सिखलाना बूढे तोते को पढ़ाने से कम कठिन नहीं है। मेरा यह आशय नहीं कि बड़ी आयु में शिक्षा हो नहीं सकती, मैंने कुछ आर्य ऐसे देखे हैं

जिन्होंने बड़ी आयु में सत्कार के नियम सीखे हैं। किन्तु जिन बालकों को छोटी आयु से हो अभिवादन की शिक्षा दी जायेगी तो बड़ी आयु होने पर दूसरे का उचित मान और सत्कार करना उनका स्वाभाविक गुण हो जाता है। इससे असंख्य लाभ होते हैं। मनु महाराज लिखते हैं।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम्।

अर्थात् अभिवादन करना जिसके स्वभाव में ही हो और प्रतिदिन वृद्ध पुरुषों की सेवा करे उसकी आयु विद्या यश और बल सदैव बढ़ते रहते हैं। मनु जी के इस कथनानुसार अभिवादन ही एक मोहिनी मन्त्र है जिस के द्वारा सभी उत्तम गुण वश में हो सकते हैं। अभिवादनशील पुरुष कठोर से कठोर पुरुष को मोम के समान नम्र बना देता है। इस समय जो नास्तिकता की लहर चल रही है उसका मुख्य कारण हमारी सन्तानों का अभिवादनशील न होना ही है। इस समय के युवकों तथा प्रौढों (अधेड़ों) के अभिमान की आधार शिला बाल्यावस्था में ही रखी जाती है जिस को यह लोग स्वात्माभिमान (Self respect) समझते हैं। यह बहुत बड़े प्रकार का अभिमान और आत्मश्लाघा हो है निष्कर्ष यह है कि आबाल वृद्ध वनिता सभी के लिए अभिवादनशील होकर प्रतिदिन अपने बड़ों को नमस्ते करना तथा उन की सेवा करना एक अत्यन्त आवश्यक धर्म है। अतः सबको परस्पर एक दूसरे को नमस्ते करके ही सोना चाहिये। ब्रह्मचारियों को अभिवादनशील और नित्यंवृद्धोपसेवी अवश्य ही होना चाहिए इसी में उनका कल्याण और शोभा है।

शयन के लिए क्या शय्या आवश्यक है?

इस विषय में स्व० श्रद्धानन्द जी ने लिखा है —"गृहस्थ स्त्री

पुरुष तो भले ही निवाड़ के पलंग वा बाण सूतली की बनी हुई शय्या को (खाट को) शयन के लिए कार्य में ला सकते हैं किन्तु उन के लिऐ भी खिची हुई कठोर शय्या हो लाभदायक हो सकती है। किन्तु अविवाहित (ब्रह्मचारी) बालक बालिकाओं को कभी भी ढीले लचकदार और नरम गदेलों पर न सुलावें। दस वर्ष की आयु के पश्चात् तो सदैव कठोर तख्त व बिस्तर पर ही सुलाना चाहिए, इस से वीर्य रक्षा में बड़ी सहायता मिलती है। मैं जानता हूं कि इस समय आर्यों के १०० शिक्षा पाने योग्य बालकों में दो ही ऐसे होंगे जिन्हें गुरुकुल में नियम पूर्वक प्रविष्ट हो शिक्षा का अवसर मिला है। नहीं तो आर्य गृहस्थियों की सन्तान घर पर रह कर ही स्कूलों और कालिजों में शिक्षा ग्रहण कर रही है उनके लिए भी इन उत्तम नियमों का पालन बहुत लाभदायक हो सकता है।

महर्षि दयानन्द जी ने पलंग, चारपाई सभी प्रकार की शय्याओं पर सोना वर्जित किया है। उन्होंने तो ऋषियों के इस वाक्य 'उपरि शय्यां वर्जय' का उद्धरण देकर ब्रह्मचारियों को यही आदेश दिया है कि सदैव भूमि पर शयन करें। ब्रह्मचारी रामप्रसाद ने अपनी आत्मकथा में लिखा है—

"इसके बाद मैंने सत्यार्थप्रकाश पढ़ा। इस से तख्ता ही पलट गया। सत्यार्थप्रकाश के अध्ययन ने मेरे जीवन के इतिहास में एक नवीन पृष्ठ खोल दिया। मैं ने उस में उल्लिखित ब्रह्मचर्य के कठिन नियमों का पालन करना आरम्भ कर दिया। मैं एक कम्बल को तख्त पर बिछा कर सोता और प्रातः काल चार बजे से शय्या त्याग कर देता।"

वे इसी विषय में दूसरे स्थान पर लिखते हैं—

"सोना सदैव खुली हवा में चाहिए। बहुत मुलायम चिलकने बिस्तर पर न सोवे। जहां तक हो सके तख्त पर कम्बल या गाढे को

चद्दर बिछा कर सोवे। अधिक पाठ करना हो तो साढे नौ या दस बजे सो जावें। प्रातःकाल ३॥ या ४ बजे उठकर कुल्ला करके और शीतल जलपान करके और शौच ने निवृत्त हो पठन-पाठन तथा व्यायामादि करें।"

"शयन से पूर्व ब्रह्मचारी का उदर (पेट) तथा मसाना (मूत्राशय) शुद्ध, मलमूत्र रहित होने चाहियें। मलमूत्र का त्याग सांयकाल शयन से पूर्व अवश्य करना चाहिये। इसमें ब्रह्मचारियों को कभी आलस्य नहीं करना चाहिये। जहाँ अनुभवी विद्वानों ने शयन से पूर्व हाथ पैर और शिर को शीतल जल से धोने पर जोर दिया है वहां शीतल जल से मूत्रेन्द्रिय का स्नान शयन से पूर्व करना आवश्यक ठहराया है। स्वप्नदोषादि विकारों से बचने के लिए यह आवश्यक भी है। इन भयंकर विकारों से बचने के लिये ब्रह्मचारी रामप्रसाद बिस्मिल इसी विषय में इस प्रकार से सावधान करते हैं—

"स्वच्छ वायु का सेवन कर संध्या समय भी शौच अवश्य जावें। थोड़ा सा ध्यान करके हल्का सा भोजन करलें। यदि हो सके तो रात्रि के समय केवल दुग्ध पीने का अभ्यास डालें या कुछ खा लिया करें। स्वप्नदोषादिक व्याधियां केवल पेट के भारी होने से ही होती हैं। जिस दिन भोजन भलीभांति नहीं पचता उसी दिन विकार हो जाता है या मानसिक भावनाओं की अशुद्धता से निद्रा ठीक न आकर स्वप्नावस्था में वीर्यपात हो जाता है।"

शयन का स्थान तथा बिस्तर

इस विषय में सभी विद्वानों का एकमत है कि सोने का बिस्तर और स्थान शुद्ध और पवित्र होना चाहिये। बिस्तर की दरी चद्दर इत्यादि को सप्ताह में एक दो बार अवश्य ही धो डालना चाहिये तथा धूप में भी कभी कभी अवश्य सुखा देना चाहिये। स्वा० श्रद्धानन्द जी महाराज इस विषय में लिखते हैं—

"शयन करने का स्थान सदैव शुद्ध वायु वाला होना चाहिये दिन में तो मनुष्य यत्न करके भी श्वास ले सकता है। किन्तु रात्रि को सोते समय श्वास का उचित रूप से चलना अभ्यास और उचित खुले स्थान पर ही निर्भर है। जल आदि से भी बढ़कर जीवन का आश्रय वायु है। अतः ग्रीष्म काल में खुले स्थान में आकाश की छत के नीचे ही सोना चाहिए।

वर्षा ऋतु में जब वर्षा वा ओस पड़ती है। बरामदे वा खुले छप्पर आदि में सोना चाहिये। शीतकाल में अन्दर ही सोना पड़ता है। वैसे तो शीतकाल स्वास्थ्य के लिए बहुत ही अच्छी ऋतु है किन्तु फिर भी उन दिनों सामान्यरूप से लोगों को और विशेष रूप से बालकों को रोगी देखते हैं इसका कारण यही है कि प्रथम तो मातायें बालकों को झूठे प्रेम के कारण उनके साथ ऐसा व्यवहार करती हैं। सोने के स्थान के सभी द्वार खिड़की रोशनदान सबको बन्द करके सोते हैं। इस प्रकार के बुरे व्यवहारों को दूर करना चाहिये। रजाई आदि में मुंह छिपा कर कभी नहीं सोना चाहिये। मुख को भयंकर से भयंकर शीत के समय में भी सिंह समान खुला रहने दें। द्वार बन्द कर लो परन्तु प्रकाशदान वातादान कुले ही रक्खो। वायु को खुले रूप में आने जाने दो।

फिर देखो प्रातःकाल आप का सारा परिवार कैसा आलस्य-हीन उठता है। वायु जितना मिले उतना थोड़ा है। शुद्ध वायु से बढ़कर आयु बढ़ानेवाला अन्य कोई अमृत नहीं है।" अतः ब्रह्मचारी को उपरिलिखित सभी नियमों का पालन करना चाहिए।

शयन-विधि

शयन विधि के विषय में पर्याप्त मतभेद दिखाई देता है। यद्यपि हमारे भारतवर्ष के प्राचीन शास्त्रकारों ने सामान्यावस्था में

बांई करवट सोना श्रेष्ठ माना है किन्तु आधुनिक वैद्य डाक्टर आदि स्वास्थ्यादि की दृष्टि से दांई करवट सोना हितकर मानते हैं उनका कथन है कि शरीर के सब अंगो में ठोस और भारी अंग यकृत् है और बांई करवट सोने से यकृत् का सब भार आमाशय पर पड़ता है और आमाशय हृदय को दबा लेता है । परिणाम यह होता कि आमाशय अपना कार्य सरलता तथा सुविधापूर्वक नहीं कर सकता और उनकी स्वतन्त्रता में भी बाधा पड़ती है । किन्तु एक लाभ अवश्य होता है कि पाचन क्रिया शीघ्र करता है और यह तो अच्छी बात है। क्योंकि जब भोजन आमशय में चला गया और हम उस समय बांई करवट न सोकर दांई करवट सो रहे हों उस समय आमाशय का भार यकृत् पर पड़ने से जो भोजन पाचन क्रिया के पश्चात् उधर यकृत् की ओर मणि से जिससे पचा हुआ भोजन (रस ठीक पकने पर) जाता है । आमाशय के दबाव से भोजन पचने से पूर्व भोजन का पतला कुछ भाग नीचे उतरने वाला समय से पूर्व आमाशय से निकल जावे तो हानि होगी, ऐसी अवस्था में वामपक्ष अर्थात् बांई करवट सोना उचित है । जब भोजन आमाशय में हो तो बांई करवट सोने से ही लाभ होगा, यह निष्कर्ष निकला। क्योंकि इस प्रकार बांई करवट लेटे रहने से पाचन शक्ति बढ़ती है क्योंकि उस समय यकृत् आमाशय के ऊपर होता है। और यकृत् की उष्णता (पित्त) पाचन क्रिया में सहायता करती है। अतः ऐसी अवस्था में बांई करवट सोना बुरा नहीं और जब तक भोजन पूर्णरूप से न पच जाये इसी बांई करवट रहना चाहिए। वैसे सबकी अवस्था समान नहीं होती। सम प्रकृति वालों के लिए सामान्यतया ऐसा ही उचित है। जब भोजन का पूर्णरूप से पचने का निश्चय हो जाये फिर वामपक्ष (बांई करवट) बदल लेवें ।.

भावप्रकाश में लिखा है कि भोजन के पश्चात् सीधा लेट कर

आठ श्वास लेवे। फिर दाईं करवट लेटकर १६ (सोलह) श्वास लेवे। भोजन के पश्चात् इस प्रकार करने से नाभि के स्थान पर बांई ओर अग्नि (जाठर) रहती है। इस लिए भोजन ठीक पचाने के लिए बांई करवट लेटे रहें वा सो जावें। इस सब कुछ लिखने का निचोड़ यही है कि भोजन के पश्चात् वामपक्ष (बाईं करवट) लेटना वा शयन करना चाहिये। इससे भोजन ठीक पचेगा। जिनको अपचन का रोग रहता है, उन्हें बाईं करवट सोना चाहिए। किन्तु ब्रह्मचारियों को भोजन इतना पहले करना चाहिये कि शयन काल तक भोजन पच जाये। शयन के समय उनका भोजन पचा हुआ व पेट हल्का होना चाहिये और उन्हें दाईं करवट सोना चाहिए। जिस समय दाईं करवट सोता है तो वाम स्वर (चन्द्र स्वर) चलता है और इससे ब्रह्मचारी अथवा सोने वाले के मस्तिष्क तथा शरीर के सभी अंगों में शीतलता और शान्ति रहती है। निद्रा गहरी मीठी और निःस्वप्न वाली आती है। ब्रह्मचारी को सदैव स्वप्नरहित निद्रा ही आनी चाहिए और शयन काल में मस्तिष्क व शरीर में शीतलता होनी चाहिये जिससे किसी प्रकार से स्वप्न विकार द्वारा ब्रह्मचर्य की हानि न हो। इसलिए दाईं करवट सोने से यह बड़ा भारी लाभ है। इस के विपरीत वाम (बाईं) करवट सोने से दायां स्वर (सूर्य स्वर) चलता है। जिस से मस्तिष्क व शरीर के अंगों में शीतलता के स्थान पर उष्णता रहती है जिससे स्वप्नदोषादि विकार सोनेवाले को सताते हैं तथा ब्रह्मचर्य की हानि हो जाती है।

भोजन के पश्चात् तुरन्त निद्रा (तन्द्रा) सी आती है, उस समय सोना निषिद्ध और हानिकारक है। समय पर शयन और समय पर जागरण ही हितकर है, जिसको बहुत ही अजीर्ण (कब्ज) रहता हो उसे ही निद्रा के आरम्भ में कुछ समय तक बांई करवट

लिटना (सोना नहीं) अच्छा रहता है। जिस से भोजन पचने में कुछ सहायता मिलती है। किन्तु ब्रह्मचारी को वामपक्ष में सोने से ब्रह्मचर्य नाश होने की आशंका बनी रहती है। वीर्यनाश से बड़ी हानि ब्रह्मचारी के लिए और क्या हो सकती है। अतः ब्रह्मचारी को दाईं करवट ही सोना चाहिए।

जिस प्रकार रोगी आदि के लिए दिन में सोने की आज्ञा दी है उसी प्रकार कोई रोगी ही बाईं करवट, सीधा वा उल्टा किसी वैद्य के परामर्श से कुछ काल के लिए सो सकता है। ब्रह्मचारी को सदैव दाईं करवट ही सोना चाहिए। उलटा सोना तो सब से अधिक हानिकारक है। पेट के बल सोने की आज्ञा तो किसी शास्त्र में नहीं दो, न किसी विशेष अवस्था में ही इस उलटे सोने का विधान है। सीधा सोने से निद्रा गहरी तथा निरन्तर नहीं आती। अपचन आदि रोग भी सीधा सोने से अधिक होते हैं। सीधा सोने से स्वप्न अधिक आते हैं। छाती पर हाथ आने से तो श्वास की गति भी रुकती वा भारी हो जाती है। श्वास खिचकर जोर के खर्राटे की आवाज करने लगता है। यहां तक कि इतने वेग से ऊंचा शब्द करता हुआ चलता है कि निकट सोनेवाले की नींद भी उसके शब्द से टूट जाती है। छाती पर हाथ आने में ही स्वप्न अधिक मात्रा में आते हैं तथा अर्धनिद्रा में व्यक्ति जोर से बोलने (बड़बड़ाने) लगता है। कितनी ही छिपाने वाली रहस्य की बातें बोलते बोलते बता डालता है। पुलिस कितने भेद इसी प्रकार निकाला करती है। अतः सीधा सोनेसे निद्रा विक्षिप्त अवस्था में रहती है, गाढ़ी मीठी और अटूट रूप में नहीं आती है ऐसी अवस्था में स्वप्न, जो कि ब्रह्मचारी को नहीं आने चाहियें, अधिक आते हैं। किसी भी कारण से स्वप्नदोष होने की संभावना रहती है। अतः सीधा नहीं सोना चाहिए।

मेखला धारण

जहां मेखला धारण के अनेक और लाभ हैं, वहां यह भी लाभ है कि मेखला की ग्रन्थि (गांठ) पीठ पर मेरुदण्ड के ऊपर रहती है। जो सीधा सोने में बाधा डालती है, चुभती है और सामान्यावस्था में तो ब्रह्मचारी को सीधा नहीं सोने देती। इसी के कारण ही एक करवट सोने का स्वभाव बन जाता है।

अतः प्राचीन काल से अब तक मेखला धारण करने की पवित्र प्रथा चली आती है जिसको अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली ने एक धक्का लगाकर न्यून किया। जिसके फलस्वरूप शिक्षित समाज अन्त्रवृद्धि (आंत का बढ़ना) हिरणिया अण्डकोष की वृद्धि आदि रोगों के रूप में भुगत रहा है। ऋषियों की चलाई मेखला (तागड़ी) आदि के धारण करने से कितने ही रोगों से छुटकारा होता है तथा यह ब्रह्मचर्य के पालन में अत्यन्त सहायक है। इस विषय में विस्तार से फिर लिखूंगा। यहां तो पाठक इतना ही समझ लें कि मेखला धारण करके सीधा सोने से ब्रह्मचारी बचेंगे। स्वप्न आदि न आकर गहरी नींद आयेगी और यथार्थ जो निद्रा का लाभ, पुनः शक्ति की प्राप्ति है, पूर्ण रूप से उन्हें ही होगा। पूर्ण सुखमय निद्रा स्वप्न-दोषादि रोगों से सुरक्षित रहने का शस्त्र रूप मेखला ही है, नहीं तो स्वप्नदोष, अन्त्रवृद्धि का आखेट होना, फिर उन से छुटकारा पाने के लिए चमड़े की पेटी बांधना अथवा शल्य क्रिया (आप्रेशन) द्वारा डाक्टरों के पञ्जे में फंसकर धन और जन वा जीवन की आहुति देनी होगी। इसी विषय पर हमारे एक सौराष्ट्र के आर्य युवक के समाचार मिले कि उस ने आन्त्र वृद्धि के कारण आन्त का आप्रेशन करवाया किन्तु डाक्टर हजरत ने उस के उदर की छोटी आंत काट डाली। उस का एक बार ही नहीं चार बार आपरेशन हो चुका है;